सारांश (Abstract)

सारांश (Abstract)

हिन्दी साहित्य का आदिवासी पक्ष वैसा नहीं है जैसा गैर आदिवासी लोग उसे समझते हैं । वास्तविक चित्र गढ़े गए चित्र से बहुत अलग है। हालांकि आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श और दलित विमर्श लगभग साथ ही हिन्दी साहित्य में विमर्श के केंद्र में उपस्थित होते हैं, इसलिये ये तीनों अपनी विचारधारा और चिंतन से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यहाँ यह कहने की जरूरत नहीं कि वर्तमान समय अस्मिताओं के उदय और उनके संघर्ष का समय है।

आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यासों की चर्चा करते हुए हम यह पाते हैं कि 'कब तक पुकारूँ' से लेकर 'बाजत अनहद ढोल' तक उपन्यासों की एक बेहद विस्तृत लम्बी परंपरा है, इसलिए इस लम्बी परंपरा को दो भागों में विभाजित कर इस शोध-कार्य में अध्ययन और विश्लेषण करने की कोशिश की गई है। पहले भाग में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों, जिनमें योगेंद्रनाथ सिन्हा का 'वनलक्ष्मी', नागार्जुन का 'वरूण के बेटे', उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य' तथा गुलशेर खाँ शानी का 'शलवानों का द्वीप' आदि महत्वपूर्ण हैं, की पड़ताल की गई है; जबकि दूसरे भाग में आदिवासी हिन्दी उपन्यास अपने विकास के साथ समकालीन आदिवासी जीवन को रेखांकित करता हुआ नज़र आता है। 'सूरज किरण की छाँव' से 'गायब होता देश' तक को देखें, तो तमाम ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें आदिवासी समाज की संस्कृति और उसके लोक–जीवन की खूबियों को प्रत्येक स्तर पर समेटा गया है । जिन्हें हम चौथी दुनिया कह रहे हैं, उनका इतिहास और भूगोल 'ग्लोबल' होती दुनिया में प्रायः एक जैसा ही है।

प्रस्तुत शोध-कार्य हेतु निम्नलिखित आदिवासी जीवन पर आधारित समकालीन उपन्यासों की आधार-ग्रंथ के रूप में पड़ताल की गई है- मंगल सिंह मुण्डा का 'छैला सन्दु', संजीव के द्वारा लिखा गया 'धार', रणेंद्र कृत 'ग्लोबल गाँव के देवता' एवं 'गायब होता देश', हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर', राजीव रंजन का 'आमचो बस्तर', श्री प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बांस फूलते हैं', विनोद कुमार का 'समर शेष है', तेजिन्दर गगन का 'काला पादरी', महुआ माजी का 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'। उक्त चयन का आधार है आदिवासी जीवन के प्रश्नों को समग्रता में समझने की चेष्टा। इसलिए इस क्रम में उन्हीं उपन्यासों का चयन किया गया है, जिनके माध्यम से इस विषय से संबंधित अधिकतर मुद्दों को समेटना संभव हो सके।

समकालीन हिन्दी उपन्यास में आदिवासी अस्मिता के प्रश्न पर चर्चा करते हुए, शोध-कार्य के लिए चुने गए उपन्यासों के माध्यम से इस विषय पर बात की गई है। रोजगार देने के नाम पर फैक्ट्री

आदि खोलना आदिवासियों को उनके जल- जंगल- जमीन से वंचित कर देता है। उन्हें अंत में कुछ नहीं मिलता। इसके लिए विकासवाद किस हद तक जिम्मेदार है, यह उनके जेल जाने के आंकड़े से पता चलता है। उदाहरण के लिए संजीव के 'धार' उपन्यास की 'मैंना' को हम देख सकते हैं, जिसे षड़यंतर कर जेल भेजा जाता है।

आदिवासी साहित्य को 'जरूरत का साहित्य' भी कहा जा सकता है। समकालीन हिन्दी उपन्यासकार आदिवासियों की जरूरतों को पहचानता है और उनके संघर्ष की लड़ाई में शामिल होकर उन्हें जागरूक भी करता है। इसी जागरूकता तथा सामूहिकता से कामयाबी की रोशनी निकलकर आती है। आदिवासी अस्मिता के अंग जल, जंगल, जमीन के सवाल को 'आमचो बस्तर' उपन्यास में बेहद रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'ग्लोबल गांव के देवता' में तो अंतरराष्ट्रीय कम्पनियों/मल्टीनेशनल कारपोरेट का अत्याचार व शोषण उपन्यासकार ने दिखाया हैं। इन कम्पनियों के कूड़े से उपजी घातक बीमारियों को दूर करने के क्रम में आदिवासी समाज अंधविश्वास के कारण 'मूड़ीकटवा' से किसी व्यक्ति का सिर कटवा देता है। असुर समाज की सांस्कृतिक एवं भौतिक सम्पदा को ताकतवर लोगों के द्वारा लूटे जाने के कारण एक पूरा का पूरा एक देश ही गायब होता जा रहा है। उदाहरण के लिए दुलमी बाँध परियोजना है, जिससे 77 गाँवों का अस्तित्व मिट सकता है। रणेंद्र का उपन्यास 'गायब होता देश' इस समस्या को बखूबी दिखाता है।

आदिवासी समाज को समकालीन हिन्दी उपन्यासों में बड़ी ही संजीदगी से समझने की कोशिश की गई है। ये उपन्यास न केवल आदिवासी समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक पक्ष को ही मुद्दों के रूप में उठाते हैं बल्कि उसके आर्थिक शोषण के भी अपना विषय बनाते हैं। इसके साथ ही उनकी मान्यताओं पर विमर्श के लिए नई जमीन भी तैयार करते हैं। इसलिए उपर्युक्त संदर्भों में समकालीन हिन्दी उपन्यासों के इस कोने को टटोलने का प्रयास इस शोध-कार्य में हुआ है। पाश्चात्य सभ्यता एवं पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था के बरअक्स समकालीन हिन्दी उपन्यास आदिवासी जीवन की सामाजिक मान्यताओं को तथा उनके जीवन एवं सभ्यता को रेखांकित करते हैं। वे उनकी सांस्कृतिक विरासत की लंबी परंपराओं एवं जिम्मेदारियों को भी सिरजते हैं। इसलिए एक बात तो तय है कि आदिवासी समाज की विकट स्थिति को दुनिया के सामने समकालीन हिन्दी उपन्यास प्रस्तुत ही नहीं करते वरन् बहुत बारीकी से विवेचित भी करते हैं। आदिवासियों की कुटुम्ब व्यवस्था, आध्यात्मिक नीति, रीति-रिवाज, विवाह पद्धति, रहन-सहन, अंधविश्वास एवं भाषा बोली आदि का संरक्षण ही इन उपन्यासों की सबसे बड़ी पूंजी है। अतः हम यह कह सकते हैं कि समकालीन हिन्दी उपन्यास आदिवासी समाज का ऐतिहासिक या भौगोलिक आख्यान भर नहीं हैं, बल्कि आदिवासी

अतीत और वर्तमान का जीवंत दस्तावेज़ भी हैं। उनके सहज जीवन जीने तथा प्रकृति प्रेम को तथाकथित आधुनिक समाज की विकासवादी अवधारणा ने जंगली घोषित कर दिया है। यह सही है कि भूमंडलीकरण के बाद आदिवासियों का आर्थिक जीवन काफी प्रभावित हुआ है और इसका कारण भी सीधा-सा है कि इसके जीवन का आर्थिक आधार बहुत हद तक जंगलों पर ही टिका हुआ है। इसलिये इनके यहाँ आर्थिक व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का ही विस्तार है। इस व्यवस्था के विस्तार में शिक्षा, जनसंचार, तकनीक सरकार तथा संविधान आदि की सक्रिय भूमिका है, जिसका जिक्र समकालीन हिन्दी उपन्यासों में मिलता है। इसके साथ-साथ खेती, खदानों में नौकरी, पौरोहित्य, वनोजन इत्यादि क्रिया व्यापार भी इनके आर्थिक पक्ष में देखने को मिलते हैं, जिससे इनका भरण-पोषण होता है। कभी-कभी इनकी स्त्रियों को तो वेश्यावृति जैसे कुकर्म करने पड़ते हैं।

आदिवासियों की धार्मिक मान्यताओं का विश्लेषण भी समकालीन हिन्दी उपन्यास में बखूबी हुआ है। धर्मनिरपेक्षता लोकतंत्र की खूबसूरती है। परंतु सुखी एवं संपन्न जीवन का प्रलोभन देकर धार्मिक कठमुल्ले गरीबों को अक्सर ठगते मिलते हैं, इससे आदिवासी अस्मिता विस्थापन की ओर जाती है। ये चीज़ें उन्हें तोड़ती ही है। ये लोग प्रकृति पूजा में ही विश्वास करते हैं तथा उपासना एवं आराधना भी पहाड़ों, नदियों, वृक्षों एवं सूर्य की करते हैं। वस्तुत: इनका धर्म सरना है। आदिवासी समाज प्रकृति के साथ-साथ अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा का भाव रखता है। वह अपने उत्सवों एवं महत्वपूर्ण अवसरों पर अवश्य उन्हें याद करता है। रणेन्द्र के 'ग्लोबल गांव के देवता' में आदिवासियों को अपने पितर-पूर्वजों को याद करते हुए दिखाया गया हैं। प्रकृति से संगति बैठाने के क्रम में वे ताक़तवरों के द्वारा शोषित होते हैं। अभाव के कारण उन्हें कभी-कभी धर्म परिवर्तन के चक्र से भी गुज़रना पड़ता है। अगर इससे भी उनका काम नहीं बनता तो वे विस्थापन की नियति को प्राप्त करते हैं।

आज आदिवासियों को जब उनके जल, जंगल, जमीन से वंचित किया जा रहा है, तो उनमें असंतोष पैदा हो रहा है। यह असंतोष कभी-कभी आंदोलन या विद्रोह में परिणत हो जाता है। व्यवस्था इन विद्रोहों के प्रति दमनकारी रवैया अपनाती है। आदिवासी विद्रोह के नायकों की महती भूमिका को नजरअंदाज करना उचित नहीं है। अतः प्रस्तुत शोध कार्य में शोधार्थी की यह कोशिश रही है कि उन अधिनायकों के अवदान के विश्लेषण से आदिवासी विद्रोह की लंबी परंपरा को जाना जा सके। इनमें बहुत-से नायक तो आदिवासी समाजों से उठकर ही आते हैं, तो कुछ गैर आदिवासी भी हैं, जो इनके अधिकारों के लिए संघर्ष करते दिखते हैं। आज मुख्य धारा की राजनीति में आदिवासी प्रतिनिधियों की संख्या में काफी इजाफा हुआ है; लेकिन स्वार्थ सिद्धि वाली राजनीति के कारण वे लोग आदिवासी अधिकारों की रक्षा के लिए किए जाने वाले संघर्ष में ना तो रुचि लेते हैं और ना ही संसद

या विधानसभाओं में उनकी वकालत करते हुए दिखाई देते हैं। समकालीन राजनीति ने हर स्तर पर मायूस ही किया है। वस्तुतः समकालीन हिन्दी उपन्यास तथाकथित विकास से आदिवासी समाज की टकराहटों के बहाने उनके जीवन संघर्ष का चित्रण करता है। इन नायकों और इन विद्रोहों को भी यह उपन्यास पर्याप्त जगह देता है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरण के प्रति गहन चिंता दिखाई पड़ती है। इनमें एक ओर बढ़ रहे पर्यावरण संकट का संकेत मिलता है, तो दूसरी ओर इनमें इन संकटों के संभावित समाधान का भी जिक्र मिलता है। यह बिला किसी संकोच के कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी उपन्यासों का आदिवासी पक्ष पर्यावरण सजगता फैलाने के लिहाज से भी बहुत महत्वपूर्ण है। वह पर्यावरण को माल/ उत्पाद या उपभोग-सामग्री बनने देने के खिलाफ़ है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी उपन्यास का आदिवासी पक्ष अपनी सामर्थ्य के हिसाब से आदिवासी विमर्श के बहाने आदिवासियों के हक़ की बात तो करता ही है; साथ ही वह उनके जीवन के विविध पक्षों को भी आलोचनात्मक दृष्टि से देखता है। उसका स्वर आदिवासी अस्मिता की खिलाफ़त करनेवालों के प्रतिपक्ष का स्वर है। इन उपन्यासों से भविष्य के आदिवासी समाज के लिए आशा तो बंधती ही है।

उक्त शोध-कार्य आदिवासी जीवन को समकालीन हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से समझने का एक लघु प्रयास भर है। यदि इस प्रयास में शोधार्थी के द्वारा कोई भूल-चूक हो गई हो गई हो तो वह क्षमा-प्रार्थी है। निश्चय ही इस प्रयास (शोध-कार्य) की अपनी सीमा तो है ही, जिससे इस क्षेत्र में किए जाने वाले भविष्य के शोध-कार्यों की भवितव्यता सूचित होगी ही।

सधन्यवाद !